सकारात्मक बदलाव की आधारशिला है : शिक्षा

बदलाव के मायने :

सकारात्मक बदलाव यानी ऐसा बदलाव जो जीव, प्रकृति और पर्यावरण के वर्तमान एवं भविष्य के लिए सार्थक के साथ साथ तीनों में सौहार्द्रपूर्ण सामंजस्य स्थापित करने में समर्थ हो । बदलाव तो अवश्यंभावी है । सिर्फ बदलाव हो जाना ही पर्याप्त नही है, अपितु बदलाव के साथ साथ हमारी मानवता, नैतिकता और भौतिकता समग्र रूप से अग्रसित होनी चाहिए । गौरतलब है कि वर्तमान सदी में बदलाव की गति अवश्य तेज हुई है, चौतरफ़ा "देश बदल रहा है आगे बढ़ रहा है" के नारे गूँज रहे हैं परन्तु क्या यह सच नही है कि भौतिकता में हम जितना आगे बढ़ रहे हैं उतना ही हम प्रकृति, पर्यावरण और स्वयं की सामंजस्यता से भी परे होते जा रहे हैं ? वजह भी साफ़ है कि हम भौतिकता की लोलुपता में इतने मशगूल हो चुके हैं कि हमारी अन्तर्दृष्टि और दूरदृष्टि एक संकुचित दायरे में सिमटकर निरर्थक बदलाव की मूक साक्षी बन चुकी है ।

सार्थक शिक्षा :

शिक्षा शब्द संस्कृत भाषा के " शिक्ष" धातु से बना है । जिसका अर्थ है – सीखना और सिखाना । अंग्रजी भाषा में शिक्षा को "Education (एजूकेशन)" कहा जाता है, जोकि लैटिन भाषा के E (ए) एवं Duco (ड्यूको) शब्द से मिलकर Education (एजूकेशन) बना है "E (ए)" शब्द का अर्थ 'अन्दर से' और "Duco (ड्यूको)" शब्द का अर्थ है 'आगे बढना' । अर्थात् Education शब्द का शाब्दिक अर्थ "अन्दर से आगे बढ़ना" है । दूसरी स्वीकरोक्ति यह है कि लैटिन भाषा के "Educare (एजुकेयर)" तथा "Educere (एजुशियर)" शब्द को भी "Education" शब्द के मूल रूप में स्वीकार किया जाता है । कुल मिलाकर हम यह कह सकते है कि आन्तरिक शक्तियों को बाहर लाने अथवा विकसित करने की क्रिया शिक्षा कहलाती है । कई अन्य विद्वानों की परिभाषाएँ निम्न है –

1- स्वामी विवेकानन्द " मनुष्य में अन्तर्निहित पूर्णता को अभिव्यक्त करना ही शिक्षा है ।"

2- महात्मा गाँधी " शिक्षा से मेरा अभिप्राय बालक या मनुष्य के शरीर, मस्तिष्क या आत्मा के सर्वांगीण एवं सर्वोत्तम विकास से है ।"

3- सुकरात- "शिक्षा का अर्थ है कि प्रत्येक मनुष्य के मस्तिष्क में अदृश्य रूप से विद्यमान संसार के सर्वमान्य विचारों को प्रकाश में लाना।"

4- फ्रोबिल- शिक्षा वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा बालक की जन्मजात शक्तियां बाहर प्रकट होती है।"

5- एस. इस.मैकेन्जी – " व्यापक अर्थ में शिक्षा एक ऐसी प्रक्रिया है जीवन-पर्यन्त चलती है तथा जीवन के प्रत्येक अनुभव से उसमें वृद्धि होती है ।"

6- ब्राउन- " शिक्षा चैतन्य रूप में एक नियंत्रित प्रक्रिया है, जिसके द्वारा व्यक्ति के व्यवहार में परिवर्तन किये जाते हैं तथा व्यक्ति के द्वारा समाज में ।"

अध्यात्मिक चिंतन :
जब हम अपनी अन्तरात्मा से निकलने वाले भावों को शब्दो में पिरोकर परमात्मा को समर्पित करते हैं तो भी शिक्षा का एक यथार्थ स्वरूप झलक उठता है –

"असतो मा सद्गमय,
तमसो मा ज्योतिर्गमय,
मृत्योर्मामृतङ्मय ।"
(हे प्रभु ! हमें असत्य से सत्य की ओर ले चलो,अंधकार से प्रकाश की ओर ले चलो, मृत्यु के भय से अमृत्व की ओर ले चलो ।)

सन्मार्ग दिखाता गाँधी का एकादश चिंतन :
महात्मा गाँधी जी ने जिस एकादशव्रत का प्रतिपादन किया, वह हम सबके लिए भी अनुकरणीय है। बापू की शिक्षाओं में ग्यारह प्रकार की बातें सिखलाई जाती है—
"आहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, असंग्रह।
शरीरश्रम, आस्वाद, सर्वत्र भयवर्जनम।।
सर्वधर्म-समानत्व, सवदेशी भावना।
हीं एकादशा सेवावीं नम्रत्वे व्रतनिश्चये।।"
अर्थात शिक्षा का लक्ष्य उपरोक्त श्लोक की बातों को हम सबके जीवन में धारण करना सिखलाना है ताकि हम सब अपने जीवन में सर्वांगीण विकास कर सकें। इस श्लोक में निम्न बातों की शिक्षा दी गई है—
(1) आहिंसा अर्थात् किसी को दुख न देना ।
(2) सत्य अथवा सच्चाई ।
(3) अस्तेय अर्थात चोरी न करना ।
(4) ब्रह्मचर्य अर्थात मन-वचन-कर्म की पवित्रता ।
(5) असंग्रह अर्थात लोभवश अधिक वस्तु, धन इकट्ठा न करना ।
(6) शरीरश्रम अर्थात परिश्रम से जी न चुराना ।
(7) अस्वाद ।
(8) सब प्रकार के भयों को समाप्त करना ।
(9) सभी धर्मों में समानता का भाव रखना ।
(10) स्वदेशी अर्थात अपने देश की चीजों से प्रेम करना ।
(11) स्पर्श-भावना बनाए रखना ।

अस्पृश्य या स्पर्श का मतलब अछूत से है। बापू इस तरह की भेदभाव पूर्ण भावनाओं को अच्छा नहीं मानते थे । इसलिए उन्होंने स्पर्श-भावना या घुल-मिलकर रहने की प्रवृत्ति पर जोर दिया। आदर्श शिक्षा हम सबको ये बातें सिखाती हैं । मगर अब हमें स्वयं से यह पूछना ही होगा कि क्या हम और हमारी नवनिहाल पीढ़ी ऐसी शिक्षा ग्रहण कर पा रही है जोकि हमें अन्दर से विकसित कर सके ? शायद नहीं ।

सच की पड़ताल जरूरी :

गुजरते वक्त के साथ साथ राष्ट्रीय सामाजिक परिवेश में भी बदलाव आया । हाँ यह जरूर है कि यह बदलाव समरूप न होकर वैचारिक, भागौलिक, प्राकृतिक, राजनैतिक, अनुसंधानिक आदि रूपों में देखने को मिला । खैर यह भी परम सत्य है कि गतिशीलता के साथ साथ परिवर्तन अवश्यंभावी है । परिस्थिति, वर्ग, स्तर तथा व्यवहार के अनेकोनेक प्रतिमान हर छण बनते भी है और बिगड़ते भी । परन्तु आज अत्याधुनिक संसार के इस हर छण बनते बिगड़ते प्रतिमान एवं सामाजिक उठा-पटक के मूल में जाकर सच को टटोलने की जरूरत है और यह देखना बेहद जरूरी है कि यह व्यापक परिवर्तन हम भारतीयों के वर्तमान और भविष्य के लिए कितना सार्थक है ? क्या कहीं ऐसा तो नही कि हम परिवर्तन की प्रकिया एवं परिणामों को परखे बिना अवचेतन रूप से अपना रहे हों ? कई बार हम परिवर्तनों के मूक साझी बनकर या तो स्वत: परिवर्तन को अपना लेते हैं या फिर परिस्थितियों की विवशता वश हम शनै: शनै: अपनाकर उसी में रम जाते है । कुल मिलाकर यदि हम सकारात्मक बदलाव का मूल समझे तो वह है – शिक्षा ।

तब से अब तक :

सदियों से भारतीय शिक्षण परम्परा और पद्धति समूचे विश्व में ज्ञान, कौशल और आदर्श की छाप छोड़ती रही है । प्राचीन काल में गुरूकुलों, आश्रमों व मठों में शिक्षा ग्रहण करने की व्यवस्था होती थी । मध्यकाल में नालन्दा, तछशिला, वलभ्भी आदि प्राख्यात विश्वविद्यालयों को शिक्षा का गढ़ माना जाता था । समयोपरान्त मदरसे, मक्तब और विद्यालय शिक्षा के केन्द्र बने । मुगलकाल में प्रारम्भिक शिक्षा 'मकतब' और उच्च शिक्षा 'मदरसों' में दी जाती थी । प्रारम्भ में शिक्षा के दो ही रूप थे – प्रारम्भिक शिक्षा एवं उच्च शिक्षा । भारत में आधुनिक व पाश्चात्य शिक्षा की शुरूआत ब्रिटिस ईस्ट इण्डिया कम्पनी के शासनकाल से हुई । लोकशिक्षा के लिए स्थापित समान्य समिति के दस सदस्यों के दो दल बनाए गए थे । एक आंगल या पाश्चात्य विद्या के समर्थक थे तो दूसरे प्राच्य विद्या के । "अधोमुखी निस्पादन सिद्धान्त" जिसका अर्थ था – शिक्षा समाज के उच्च वर्गो को दी जाए । 'वुड़ ड़िस्पैच' के पहले तक इस सिद्धान्त के तहत भारतीयों को शिक्षित किया गया । जिसका मुख्य उद्देश्य था कि भारत के उच्च वर्ग और सक्रिय समाज को पाश्चात्य शिक्षा देकर उनके मूलभूत विचारों को बदलना । खैर वो अपने इस उद्देश्य में काफी हद तक सफल भी रहे, जिसका नतीजा आज साफ दृष्टव्य है । आज न तो हम भारतीय संस्कृति के अनुगामी रह गए है और न ही पाश्चात्य संस्कृति के, जोकि हमारे मानवीय नैतिक पतन की मुख्य वजह भी दीख पड़ती है । 'बोर्ड आँफ कन्ट्रोल' के प्रधान चाल्स वुड़ नें 19 जुलाई 1854 को भारतीय शिक्षा पर एक व्यापक योजना प्रस्तुत की । जिसे 'वुड़ का ड़िस्पैच' कहा जाता है । समय बदलता गया, साथ ही साथ शिक्षण पद्धति और उसका उद्देश्य भी संकुचित होता गया । सन् 1937 में गाँधी जी द्वारा एक बार पुन: प्राच्य भारतीय शिक्षण पद्धति, कौशल विकास एवं सर्वांगीण विकास को जीवित करने हेतु बर्धा नामक स्थान पर एक नई शिक्षण योजना का सूत्रपात किया । इसमें

सर्वांगीण विकास एवं स्वदेशी नीतियों को मद्देनजर रखकर हस्त उत्पादन कार्यों को महत्व दिया गया । इसमें बालक अपनी मात्रृभाषा में 7 वर्ष तक अध्ययन करके अपने कौशल को सकारात्मक दिशा में निखारता था ।

सन् 1944 में केन्द्रीय शिक्षा सलाहकार मण्डल ने "सार्जेण्ट योजना" के नाम से एक शिक्षा योजना प्रस्तुत की, जिसमें 6 से 11 वर्ष तक के बच्चो के लिए नि:शुल्क अनिवार्य शिक्षा दिए जाने की व्यवस्था थी । धीरे धीरे शिक्षा व्यवसायीकरण और बाजारीकरण में तब्दील हो गई । लोगों ने मूल्य परक शिक्षा को उसके मूल उद्देश्यों से भटकाकर मोटी कमाई का जरिया बना लिया । पैसों से विद्यालय की मान्यता मिलने लगी, शिक्षा की गुणवत्ता में गिरावट के साथ साथ महज अत्याधुनिक दिखावटों में सिमट गई । इसके जिम्मेदार न केवल वो मोटी कमाई वाले लोग हैं बल्कि हम आप भी पूर्ण रूपेण जिम्मेदार हैं । हमारे अन्दर से सामाजिक दायित्व बोध की ऊर्जा अब सिर्फ एकाकी परिवार के रोटी, कपड़ा और मकान की उलझन में व्यय हो रही है । यह भी कटु सत्य है कि बदलाव हर कोई चाहता है परन्तु स्वयं न करना पड़े । जरा सोचिए, क्या ऐसे बदलाव सम्भव है, शायद कभी नही..... ??? खाँमियाजा भी सामने है – शिक्षा अब सिर्फ एक संकुचित उद्देश्यों में सिमट गई है । जिससे प्रारम्भ से ही अधिकतर नवनिहाल इस संकुचन का शिकार हो जाता है और जीवन भर वह मानवता और सामाजिक दायित्व बोध से परे रहकर सिर्फ और सिर्फ पारिवारिक झंझावातों में उलझा रह जाता है । वास्तव में अब यह संकुचित शिक्षण व्यवस्था ही राष्ट्र उन्नति, सामाजिक बदलाव और सद्भाव के लिए यह एक प्रश्नचिन्ह बन चुकी है।

विरासत को संजोना होगा :

शिक्षा ही एक ऐसा सशक्त माध्यम है जिससे कोई भी समाज, वर्ग और राष्ट्र सकारात्मक दिशा में अग्रसित होकर यथोचित बदलाव लाकर भविष्य की एक समृद्धशाली संकल्पना को साकार कर सकता है और इसके विपरीत समर्थ शिक्षा के अभाव में अवनति के गर्त में भी जा सकता है । शिक्षा के माध्यम से ही हम अपने रहन-सहन, मूलभूत सकारात्मक सोच व प्राच्य मानवीय नैतिकता को पीढ़ी दर पीढ़ी पहुँचा सकते हैं । जोकि आगे चलकर यही पीढ़ियाँ ही राष्ट्र की दिशा तय करती हैं । गौरतलब यह है कि प्रदान की जाने वाली शिक्षा समग्रता, सर्वांगीणता और संस्कार युक्त होनी चाहिए, न कि किसी निश्चित दायरे में सिमटी संकुचित शिक्षा । समयानुसार सामाजिक, राजनीतिक, वैचारिक परिवर्तन होने तो स्वभाविक है परन्तु आने वाली पीढियों को एक सकारात्मक राह दिखाना हम सबका दायित्व है ।

लोकव्यापारीकरण का खामियाजा :

विशेष ध्यातव्य यह है कि सदियों से लेकर आज तक समाज में होने वाले सामयिक परिवर्तनों ने अपने संकुचित उद्देश्य प्राप्ति हेतु शिक्षा की दिशा को ही परिवर्तित कर दिया । प्राचीन काल में शिक्षा का एकमात्र उद्देश्य था – आत्म ज्ञान । वह समाज स्वयं महापुरूषों की सानिध्यता में रहकर आत्मा को परमात्मा से जोड़ने व सच्ची अध्यात्मिक अनुभूति के साथ साथ अन्तर्निहित शक्तियों के विकास को ही सार्थक शिक्षा समझता था और समाज व राष्ट्र को एक नई सकारात्मक दिशा प्रदान करने हेतु संकल्पित भी होता था । मगर समय के बदलाव ने तो शिक्षा की जमीनी धुरी की दिशा ही बदल ड़ाली । शिक्षा का लोकव्यापारीकरण और बाजारीकरण शुरू हो गया । इस व्यवस्था ने तो शिक्षा को सिर्फ सर्टिफिकेशन की खोखली सतह पर ला खड़ा किया । लोकव्यापारीकरण के आकड़े सिर्फ एक बेहतरीन रिकार्ड़ बनकर दफ्तरों की फाइलों की शोभा जरूर बढ़ा रहे है । इतना ही नही, तंग गलियों के दो-चार

कमरों और कुछ गिने चुने अध्यापकों में सिमटे महाविद्यालयों से जेब भी सीधी की जा रही है । इसके वर्तमान और दूरगामी परिणाम भी हमारे सामने है, जोकि बेहद चिन्तनीय हैं । गर हम गौर करें तो यह पाएगें कि यदि ऐसी शिक्षण व्यवस्था कुछ दिनों तक चलती रही तो यह न केवल हमारी युवा पीढ़ी को समर्थ ज्ञान से वंचित कर देगी अपितु राष्ट्र को भी जड़ से खोखली कर देगी ।

दायित्व बोध से बदलाव सम्भव :

हममें से कोई इस बात से इंकार नही कर सकता कि मनुष्य की चेतना जगाने का सर्वोत्तम माध्यम है – शिक्षा । स्वतंत्रता प्राप्ति के लम्बे अर्से के बाद भी हम कोई सफल शिक्षण नीति निर्धारित नही कर पा रहे हैं । कुछ गिने चुने सत्तारूढ़ राजनीतिक लोग अपने निजी स्वार्थ हेतु लुभावने सपनें दिखाकर शिक्षण व्यवस्था में फेरबदल करके जनता को गुमराह कर रहे हैं और अपना उल्लू सीधा करने में जुटे हुए हैं । समस्याँ यह भी है कि आम लोगो को इतना एहसास भी नही हो पा रहा है कि वास्तव में शिक्षा का क्या उद्देश्य होना चाहिए और उसके विपरीत क्या होता जा रहा है । नतीज़ा भी साफ है – सर्टिफिकेट की भरमार के साथ साथ बेरोजगारी और समर्थ ज्ञान की कमी । कुछ लोगो का कहना यह भी है कि बदलते वक्त के साथ साथ व्यवसायिक शिक्षा भी जरूरी है । चलो हम उनकी बात भी मानते हैं । मगर जब हम शिक्षा को उसके मूलभूत उद्देश्य से बदलकर व्यवसायिक उद्देश्य पर ला खड़ा किए तो फिर भी इतनी बेरोजगारी क्यूँ ? क्या यह सच नही कि हममें से हर कोई इन दूरगामी परिणामों को देखते हुए भी सकारात्मक बदलाव की अलख जगाने की जिम्मेदारी अपने कंधो पर लेने से हिचक रहा है । हमें अपने दायित्व को समझकर दूरगामी परिणामों को मद्देनजर रखते हुए सकारात्मक बदलाव में एक सक्रिय हिस्सेदारी निभानी ही पड़ेगी । वरना यदि हम अब नही चेते तो भविष्य में काल का विकराल रूप हमें चेताएगा ही ।

लेखिका परिचय –

“अन्तू, प्रतापगढ़, उत्तर प्रदेश की निवासिनी शालिनी तिवारी स्वतंत्र लेखिका हैं । पानी, प्रकृति एवं समसामयिक मसलों पर स्वतंत्र लेखन के साथ साथ वर्षो से मूल्यपरक शिक्षा हेतु विशेष अभियान का संचालन भी करती है । लेखिका द्वारा समाज के अन्तिम जन के बेहतरीकरण एवं जन जागरूकता के लिए हर सम्भव प्रयास सतत् जारी है ।”

सम्पर्क – shalinitiwari1129@gmail.com